ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 **PP. No.- 109-111**
I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-19, No.-II, Issues-36, YEAR-April-June. 2025

थारू जनजाति में लोक कला की परम्परा

1. डॉ0 गुलाबधर
2. जयवीर सिंह

1. विभागाध्यक्ष, 2. शोध अध्येता– चित्रकला विभाग, ज0 रा0 दिव्यांग राज्य विश्वविद्यालय चित्रकूट (उ0प्र0) भारत

Received-15.04.2025, Revised-22.04.2025, Accepted-28.04.2025 **E-mail : skumarmandal11111@gmail.com**

सारांशः ***थारू जनजाति का लोक साहित्य और लोक कलाऐं समृद्ध एवं आकर्षक है। थारूओं की कला संस्कृति में नृत्य, नाट्य, भित्तिचित्र आदि उनकी सौन्दर्य प्रियता एवं पारंपरिक कला के प्रकाशनीय उदाहरण है। लेकिन हस्त शिल्प की कला विशेष अनूठी है। प्रकृति से प्राप्त संसाधन मूँज, मिट्टी, काष्ठ द्वारा थारू अपने जीवन की समस्त आवश्यक वस्तुओं का निर्माण स्वयं कर लेते हैं। थारू कला की हस्तनिर्मित वस्तु किसी न किसी विशेष प्रायोजन के लिए होती है। थारू जनजाति की कला परम्परा का अवलोकन उ0प्र0 के लखीमपुर खीरी, बहराइच और बलरामपुर के गाँवों में देखा जा सकता है। थारू जनजाति में कला की लोक प्रियता पायी जाती है। गाँवों की विभिन्न महिलाऐं अपने कलात्मक हुनर से अपनी लोककला परम्परा को प्रगति दे रही है। थारू समुदाय के लोग डलिया, टोकरी, चटाई और घर के उपयोग की अनेक वस्तुएं मूँज, गाहेरा, मिट्टी बाँस और काष्ठ से बना लेते हैं। डलिया पर कलात्मक का प्रदर्शन देखा जा सकता है। डलिया पर बनाई गये सुन्दर फूल, इसके ढक्कन पर बने फूल, उन की लटकन को देखकर लगता है। कि मानव जाति ने इस कलात्मकता को नया आयाम दिया है।***

कुंजीभूत शब्द– थारू जनजाति, लोक कला की परम्परा, लोक साहित्य, पारंपरिक कला, हस्त शिल्प, कलात्मक हुनर

लोक कला की परम्परा– उत्तर प्रदेश राज्य के लखीमपुर खीरी, बहराइच, गोंड़ा और बलरामपुर इसके साथ–साथ उत्तराखंड, बिहार राज्य के पश्चिम चम्पारण में निवास करती हैं और अगर विदेश की बात कि जाए, तो यह जाति नेपाल देश में निवास करती हैं। यह जाति आज भी अपनी विशिष्ट लोक कलाऐं, पहनावा और रहन–सहन के लिए आज भी जानी जाती है। इन लोगों की अधिकाशंता संख्या भारत के तराई क्षेत्र में पायी जाती है। लोक कार्यक्रमों में विवाह संस्कार, विभिन्न उत्सव, धार्मिक त्योहारों के अवसर पर चित्र, लोक गीत, नृत्य आदि लोक कलाओं का प्रदान किया जाता है। थारू शब्द के उत्पत्ति का शब्द राजस्थान के थार मरूस्थल से रहा हैं। मध्यकाल में जब मुस्लमानों ने चितौड़ पर अक्रमण किया तक राजपुर नारियों ने अपने लोगों के साथ भागकर हिमालय के तराई क्षेत्र में निवास करनी लगी। जिसका सौन्दर्य हमेशा आकर्षण का केन्द्र रहा है। संगीत की मधुर तान, नृत्य की लयात्मक भाव मुद्राऐं, चित्रकला में चित्रकार की अभिव्यक्ति मानव दृष्टिकोण को हमेशा अपनी ओर आकर्षित करती हैं। किसी भी देश समाज में कला का प्रादुर्भाव में हृदय तन्त्री को झंकृत किये बिना नहीं रह सकती। यद्यपि आज का व्यवहार अपने बौद्धिक तर्क से कला अति जटिल एवं सर्वसाधारण की समझ की सीमा से परे की वस्तु बनाने में संलग्न है, किन्तु दूसरी ओर लोक परम्परा अपने रचनात्मक पक्ष से नैसर्गिक अभिव्यक्ति का मार्ग खोज ही निकालती है, जो कि जीवन–विस्मृति और आत्म सुख का एकमात्र साधन है, परन्तु इसका कला की उच्चतम् असाधारण एवं असामान्य मान्यताओं से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। हर्ष और उल्लास से भरकर उन्हीं अनेक चित्रों को जन–जीवन में चित्रित किया गया है। जो भीतर से लोक विश्वासों और जन–स्मृतियों के क्रमागत इतिहास को समेटे हुये हैं और भाव व्यंजना की दृष्टि से जिनकी समता कर पाना अति कठिन है। लोक कलाओं का मानव की भावनाओं से सीधा सम्बन्ध है। मनुष्य परम्परागत् रूढ़ियों के रूप में प्रचलित करना चाहता है। मानव का हमेशा से ही यही स्वभाव रहा है कि वह अपनी प्राचीन संस्कृति, धर्म और कला सदैव जीवित रहे।

प्रो0 ए0के0 हल्टर ने लिखा है कि "लोक कला परम्परागत–कला का वह आवश्यक स्वरूप है कि जिसकी उपेक्षा गंवारू और अबड़खाबड़ कला कहकर नहीं की जा सकती है, चूंकि इसका संबंध मानव की भावनाओं से सीधा है।" मनोवैज्ञानिक बुद्धि परीक्षण प्रौण मानवीय चेतना कोश में भी सुरक्षित पाता है, उसी प्रकार इस लोककला का जोकि प्रागैतिहासिक काल में उत्पन्न हुई थी विश्व की अनेकों सभ्यताओं में प्रागैतिहासिक कालीन चित्र पाये जाते हैं। जिनमें की लोक परम्परा की चित्रकृतियां दृष्टिगत होती हैं।

प्रो0 सी0एल0 झा के अनुसार "लोक–कला मानवीय भावनाओं के साथ–साथ चली आ रही है, जो अति प्राचीन है।" मानवीय भावनाओं में लोक कलाओं का सुन्दर प्रदर्शन होता है। इसी के साथ लोक कला निरन्तर प्रगति कर रही है। विद्वानों ने लोक कला के निरन्तर परिप्रेक्ष्य में मत दिया कि जितनी तीव्र गति से लोक कला ने प्रगति कि संस्कृति के किसी अन्य अंग ने नहीं की। अधिकांशतः कलाओं संस्कृति का विकास नदियों के किनारे हुआ। पौधे, पशु और मानव–आकृतियों जो प्रागैतिहासिक कला में पाये गये हैं। थारू जनजातीय कला संस्कृति का विकास नदी और घने जंगलों के बीच हुआ इन सब की जीवन शैली और संस्कृति भारतीय परम्परा के अनेक स्त्रोतो का परिचय हमें कराती है। यह जाति ही नहीं बल्कि भारत की जनजातियाँ विकास की मुख्य धारा से बहुत दिनों तक दूर रहीं। थारू जनजाति में विभिन्न लोक परम्पराओं में जन्म लिया। रीति रिवाज पूर्व त्यौहारों पर बनने वाले चित्र शिल्प कौशल, वस्त्राभूषण, गृह–निर्माण कला, नृत्य–संगीत और भित्तिचित्र आदि।

थारू समुदाय के लोग डलिया, टोकरी, चटाई और घर के उपयोग की अनेक वस्तुएं मूँज, गाहेरा, मिट्टी बाँस और काष्ठ से बना लेते हैं। डलिया पर कलात्मक का प्रदर्शन देखा जा सकता है। डलिया पर बनाई गये सुन्दर फूल, इसके ढक्कन पर बने फूल, उन की लटकन को देखकर लगता है कि मानव जाति ने इस कलात्मकता को नया आयाम दिया है।

थारू जनजाति की कला परम्परा का अवलोकन उ0प्र0 के लखीमपुर खीरी, बहराइच और बलरामपुर के गाँवों में देखा जा सकता है। थारू जनजाति में कला की लोक प्रियता पायी जाती है। गाँवों की विभिन्न महिलाऐं अपने कलात्मक हुनर से अपनी लोककला परम्परा को प्रगति दे रही है।

महिलाओं की हस्तशिल्प कला– महिलाऐं प्रायः घरेलु उपयोग में की जाने वाली वस्तुऐं को बनाने में अधिक रूचि लेती हैं। मूंज, सिक तथा मजबूत जंगली घास से महिलाएं दौरी, दलिया, सूप, चटाई, झाँडू रस्सी आदि बनाती है। स्त्रियों के अंदर कलात्मकता का भाव प्रस्फूटित होता है।

मिट्टी के चूल्हे तथा अनाज रखने के लिए कोजर भी महिलाऐं बनाती हैं। जलावन के लिए गोबर से बनाया जाने वाला गोइठा भी थारू महिलाऐं बड़े कलात्मक ढंग से निर्मित करती हैं। थारू महिलाएं स्वेटर शॉल ही नहीं बनाती हैं, बल्की सिलाई, कताई द्वारा वस्त्र का निर्माण भी स्वयं कर लेती हैं। थारू महिलाएं अपने घर–आँगन तथा मंदिरों को भी सालीनता के साथ सजाती हैं।

अनुरूपी लेखक/ संयुक्त लेखक

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-19, No.-II, Issues-36, YEAR-April-June. 2025

स्थानीय नदियाँ से प्राप्त, सीप, मोती, घोंघी आदि से घर की सजावट अत्यन्त आकर्षण रूप में की जाती है। घर की सजावट के लिए आवश्यक सामग्री तथा झालर का निर्माण करती हैं। गृह दीवारों पर भित्ति चित्रों को बनाती हैं तथा घर के दरबाजे अरिपन यानि, रंगोली से सजाती है। दीवारों पर फूलों की आकृतियाँ मिट्टी से उभारदार बनायी जाती हैं। तत्पश्चात् उनमें में खनिज रंगों से रंग भरा जाता है, परन्तु आज वर्तमान समय में कहीं–कहीं रासायनिक रंगों का प्रयोग होने लगा है। दीवारों पर चित्र बनाने की कला आज से नहीं बल्कि प्रागैतिहासिक काल से ही चली आ रही है। प्रागैतिहासिक में जहाँ दीवारों जो चित्र बना उनको चित्रों का नाम दिया गया। जब दीवारों को समतल करके मौर्यकाल से लेकर गुप्तकाल तक दीवारों पर चित्र रचना होने लगी, तब उसको भित्ति चित्र कहा गया। अजन्ता भित्ति चित्रों के आलेखनों में धरातल एवं माध्यम विषय की दृष्टि से सर्वाधिक महत्व रखते है। धरातल वह प्रक्रिया है जिस पर इन आलेखनों का विकास हुआ है। और आलेखनों में गति और लय का समन्वय हुआ।

भारतीय चित्रकला में आलेखन धरातल और माध्यम की दृष्टि से अपूर्व है। अजन्ता की गुफा चित्रों का धरातल तौयार करने के लिए पहले प्लास्टर की परत में चूना, खहिया, गोबर, बारीक बजरी को पहले गुफा की दीवार पर लगा दिया जाता था। इस गारे को कई दिनों तक अलसी के पानी में भिगोकर रख दिया जाता था। प्लास्टर की परत 1 इंच तक मोटी होती थी। इसके उपर अण्डे के छिलके की मोटाई के बराबर सफेद प्लास्टर का लेप चढा दिया जाता था। इस प्रकार प्रत्येक गुफाओं का धरातल इसी तरह चित्रण के पूर्व तैयार किया जाता था। थारू जनजाति की लोक कला में भित्ति चित्रण में दीवारों पर इस विधि का प्रयोग नहीं हुआ है। स्त्रियाँ दीवारों पर गोबर मिट्टी से लेपन करके उसी के उपर मिट्टी से डिजाइन बनाकर उन कलाकृतियों रंग भर देती है। कुछ सिपियाँ दीवारों पर उभार न देकर सीधे रंगों के माध्यम से ही भित्ति चित्र बना देती है। थारू जनजाति में स्त्रियाँ भित्तिचित्रों को तो बनाती ही हैं, लेकिन भूमि पर भी चित्रों का निर्माण कर देती है।

भूमि के चित्रों में करवा चौथ का चित्रण जन्माण्टमी पर राधा कृष्ण का चित्रण की लोक परम्परा है। जन्माष्टमी पर महिलाऐं नदी पर जाकर कृष्ण भगवान की पूजा करती हैं। तत्पश्चात घर आगमन के पश्चात् राधा कृष्ण भगवान से संबंधित चित्रों का निर्माण करती है।

पुरूषों के हस्तशिल्प– पुरूष रहने के लिए घरों का निर्माण करते है। स्थानीय जंगलों से प्राप्त मिट्टी, खड़–खरही तथा सखुआ की लकड़ी से रहने का आवास थारू स्वयं बना लेते हैं। कृषि कार्य तथा मछली पकड़ने के यंत्र एवं उपकरण पुरूषों द्वारा बनाए जाते है। कृषि कार्य उपयोग किये जाने यंत्र एवं उपकरण पुरूषों द्वारा बनाये जाते है।

थारू जनजाति की हस्त शिल्प कलाऐं–

1. नेपाल के समीप उ0प्र0 राज्य के लखीमपुर खीरी, बलरामपुर, बहराइच, बिहार के पश्चिम चम्पारण जिलों में बसी थारू जनजाति की लोक संस्कृति में हस्त कला विशिष्ट है। यह लोक संस्कृति परम्परा इनके लिए सांस्कृतिक सम्पदा है।

   थारू जनजाति का लोक साहित्य और लोक कलाऐं समृद्ध एवं आकर्षक है। थारूओं की कला संस्कृति में नृत्य, नाट्य, भित्तिचित्र आदि उनकी सौन्दर्य प्रियता एवं पारंपरिक कला के प्रकाशनीय उदाहरण है। लेकिन हस्त शिल्प की कला विशेष अनूठी है। प्रकृति से प्राप्त संसाधन मूँज, मिट्टी, काष्ठ द्वारा थारू अपने जीवन की समस्त आवश्यक वस्तुओं का निर्माण स्वयं कर लेते हैं। थारू कला की हस्तनिर्मित वस्तु किसी न किसी विशेष प्रायोजन के लिए होती है। थारू हस्तकला, शिल्पकला एवं उपयोगिता का उद्भव संगम थरूहट में देखने को मिलता है।
2. मूँज (सीक्की कला) थारू जनजाति सबसे प्रमुख कला सीक्की कला है। थरूहट जो कि पश्चिम चम्पारण के अन्तर्गत आता है। यह हस्तकला नेपाल के पूर्व में मेची नदी से लेकर पश्चिम में महाकाली के बीच बसे सभी थारूओं में मिलता हैं चाहे वो उ0प्र0 नेपाल या बिहार के थारू हो। इन हस्तनिर्मित वस्तुओं के नाम स्थान एवं भाषा विशेष रूप से भिन्न–भिन्न है। यह कला मूल राढ़ी, डाभी और सिंक से बनती है।

पश्चिमी चंपारण जिले के थारू बाहुल्य बगहा अनुमण्डल के पूर्व अनुमण्डल पदाधिकारी श्री सी. लाल सोता का कहना है–

" थारू महिलायें, लड़कियों एवं पुरूषों की रूचि हस्तकला में अत्यधिक है। सभी थारू महिलायें, लड़कियाँ, मूँज एवं सींक से बेना, डलिया, दौरी, मौनी एवं झोला इत्यादि तैयार करती है। जिन पर विभिन्न रंगों से रंगे हुए मूँज के द्वारा बुनाई की गई कलात्मक आकृतियाँ एवं सिंक के कार्य देखते ही बनते हैं।"

सींक से सामान बनाने का कार्य मुख्यतः महिलाएँ ही किया करती हैं। घर–गृहस्थी के कार्यों को निपटा कर दोपहर में गाँव की महिलाओं द्वारा सींक का सामान बनाना उनका एक दैनिक कार्य रहा है। शादी–विवाह में लड़कियों की विदाई में जो सामान दिया जाता है। उसमें बहुत सी वस्तुएँ जैसें श्रृंगार का सामान, सिन्होरा आदि रखने के लिए डब्बा (पोवती) सींक से बनाया जाता है। थारू समाज में लड़की की विदाई के समान के लिए डलिया, मौनी, पथिया, मोन्हा विशेष रूप से बनाया जाता है। इसका प्रचलन थारू समाज में आज भी प्रचलित है। थारू महिलाऐं विदाई में देने के लिए हाथी, घोड़ा भी मूंज से बनाती हैं। यह भीतर से खोखला होता है। जिसमें श्रृंगार की वस्तुएं रखी जाती हैं।

मूंज से महिलाएँ पंखा भी बनाती हैं। जिसे झालर कहा जाता है। यह तड़कुल के पत्तों से बना होता है। थारू मूंज–सींकों से कप–प्लेट एवं गमलों की आकृति के पात्र भी बनाती हैं। जिसका प्रयोग थारू जनजाति के लोग बिस्कुट, काजू–किशमिश, सूखाफल, मिठाईयाँ इत्यादि रखकर अतिथियों को देने के लिए व्यवहार करती है। लड़कियों का यह विशेष गुण माना जाता है–प्रायः सभी थारू लड़कियाँ अपने हाथों से इस कला से निर्मित विभिन्न प्रकार के वस्तुओं को तैयार कर दोंगा या द्विरागमन के समय अपने ससुराल ले जाती हैं।

मूंज बनाने की विधि– मूंज दो प्रकार की घास से बनायी जाती है। 1.राढ़ी 2. मूंज। राढ़ी के जो पत्ते होते हैं उनको काटकर बाद में सुखाया जाता है। इसके बाद इसको पूंजा जाता है। राढ़ी के उपर मूंज लपेटा जाता है। राढ़ी एक प्रकार से आधार का काम करता है।

पुंज–मुंज के नए पौधे अक्टूबर–नवम्बर के माह में बरसात के मौसम नदियों के किनारे उगते हैं। इनके कोमल कोपलों को काट कर चोटियों के रूप में सुखाया जाता है। इसके मुलायम और चिकने भाग को उपयोगी बनाने के लिए कपड़ा से रगड़कर और चिकना बनाया जाता है। मूँज की कलाकृतियों को पानी में भिंगोया जाता हैं, ताकि इसमें लोच आ जाए और वस्तुओं को बनाते समय धुमाने की प्रक्रिया के दौरान यह टूटे नहीं। इसके बाद इनकी बनावट में खूबसूरती बढ़ाने के लिए पुंज–मूंज को रगा जाता है। प्राचीन

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-19, No.-II, Issues-36, YEAR-April-June. 2025

समय में थारू जनजाति की महिलाएं विभिन्न प्रकार के पौधों के रसों से कई तरह के रंग बना लेती थी। वर्तमान समय में थारू महिलाऐं बाजार का ही रंग प्रयोग करती हैं। रंगों को अलग–अलग पात्रों में गर्म पानी के अंदर विभिन्न प्रकार के रंगों को डालकर खूब खौलाया जाता है। फिर मूँज की सूखी कपोलों को उसमें डालकर तब तक खौलाया जाता है, जब तक कोपलों पर इच्छित रंग न चढ जए।

रंगने के बाद कोपालों को धूप में सूखा लिया जाता है। यह रंग एकदम पक्का होता है। भले ही इससे निर्मित वस्तु टूट–फूट जाए पर इसका रंग कभी भी फीका नहीं पड़ता है। सामाजिक विकास के विभिन्न स्तरों का प्रतिनिधित्व करने वाली थारू जनजाति की लोक कला परम्परा अनेक दृष्टियों से विशेष महत्व रखती हैं। थारू जनजाति ने विशिष्ट भौगोलिक, संस्कृतिक एवं ऐतिहासिक परिस्थितियों के कारण भारतीय समाज और संस्कृति के विकास की प्रमुख धारा से अलग रह कर भी अपनी स्वयं की भावना को जागृत करके लोक कला परम्परा को स्वतंत्र रूप से विकास किया है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. कुमारी, डॉ0 नमृता, "थारू लोक कला की विरासत"।
2. रघुवंशी, दीपा सिंह, "साक्षी" (अवध की थारू) जनजाति संस्कार एवं कला"।
3. वर्मा, निवेदिता, "जनजातीय संस्कृति"।
4. श्रीवास्तव, कुमार सुरेन्द्र, "थारू लोक गीत"।
5. राय, पारसनाथ, राय सी.पी. "अनुसंधान परिचय"।
6. अग्रवाल, वासुदेव शरण, " कला और संस्कृति"।
7. दिनकर, रामधारी सिंह, "संस्कृति के चार अध्याय"।
8. दुबे, प्रकाशचन्द्र "थारू एक अनूठी जनजाति सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन"।
9. सिन्हा, शेखर कुमार, कथन दुबे प्रकाश चन्द्र "थारू एक अनूठी जनजाति"।
10. पाण्डेय, सुभाष चन्द्र, "भारत–नेपाल के थारू जनजाति की आय व रोजगार अध्ययन"।

*****